

लोकतंत्र एवं सामाजिक समता के संवर्धक: बाबू जगजीवन राम

डा. सन्त सरन

रिसर्च एसोसिएट,
राजेन्द्र प्रसाद अकादमी, नई दिल्ली

सारांश

अरस्तू के अनुसार लोकतंत्र जनता द्वारा शासित व्यवस्था है और यह तथ्य कि जनता अपने आप को शासित करती है, सही मायने में लोकतंत्र का यही अर्थ है। प्रस्तुत शोध के प्रारूप में भारत के पूर्व उप-प्रधानमंत्री बाबू जगजीवन राम जी के संसद में प्रतिनिधित्व और जन मानस के लिए किए गये कार्यों को मूल्यांकित करने का प्रयास किया जायेगा। जिसमें उनके भाषण, संसदीय बहसों और विभिन्न मंत्रालयों में उनके द्वारा किये गये कार्यों को भी अध्ययन में समाहित किया जायेगा।

भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद जहाँ एक ओर औपनिवेशिक शासन के खिलाफ संघर्ष की शुरुआत हुई, वहीं दूसरी ओर भारतीय समाज की कमजोरियों का आंकलन, विश्लेषण तथा उनके निवारण की कोशिशें भी तेज हुईं। अपने समाज की अन्दरूनी कमियों को लेकर प्रबुद्ध भारतवासियों के बीच गहन आत्ममंथन का दौर चला। इसी आत्ममंथन के बीच से कई धर्म सुधार तथा समाज सुधार आन्दोलनों का जन्म हुआ, कुछ नई राजनीतिक विचारधाराएं सामने आईं और कुछ महत्वपूर्ण विचार-शाखाओं की नींव रखी गई। उपनिवेशवादी ताकतों के हृदयस्थल में क्रियाशील वैचारिक स्कूलों का भी अध्ययन-मनन किया गया और प्रगतिशील समाज के निर्माण के सन्दर्भ के रूप में उनका भरपूर उपयोग भी किया गया। इन्हीं परिस्थितियों के बीच पीड़ित समाज के बीच से ही नेतृत्व उभर का आया और दलित आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ।

कुंजी शब्द : बंधुत्व, आदर्शलोक, व्यक्तिनिष्ठ, संकल्पना, शिद्दत, सामाजीकरण, गणतंत्रात्मक ।

अवलोकन

भारतीय संसदीय लोकतंत्र विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में हमारे यहाँ गणराज्य परिषद थी। भारत में गणतंत्र का इतिहास लगभग 600 ईसा पूर्व से शुरू होता है, जब उत्तरी भारत में कई गणराज्य फल-फूल रहे थे। इनमें शाक्य, लिच्छवी, मल्ल और वज्जी जैसे गणराज्य शामिल थे, जहां निर्णय सामूहिक सभाओं में लिए जाते थे। यह परंपरा वैदिक काल की सभा और समिति से प्रेरित थी, और बौद्ध तथा जैन ग्रंथों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। भारत का इतिहास वैदिक काल से शुरू होता है, इस काल में समाज में मुख्य रूप से शासन व्यवस्था में सभा और समिति जैसी संस्थाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। ऋग्वेद, सबसे प्राचीन वैदिक ग्रंथ, में सभा का उल्लेख है जहां जनता के प्रतिनिधि मिलकर निर्णय लेते थे। सभा एक प्रकार की लोक सभा थी, जहां योद्धा, पुरोहित और आम लोग शामिल होते थे, जबकि समिति अधिक औपचारिक थी और राजा को सलाह देती थी। यह व्यवस्था पूर्ण रूप से गणतांत्रिक नहीं थी, क्योंकि राजा अभी भी प्रमुख होता था, लेकिन वह निरंकुश नहीं था। राजा का चयन कभी-कभी चुनाव से होता था, और सभा उसके निर्णयों को प्रभावित कर सकती थी। इतिहासकार रोमिला थापर के अनुसार, वैदिक काल में ये संस्थाएं प्रारंभिक लोकतांत्रिक तत्वों का संकेत देती हैं। इस काल में गण और संघ की अवधारणा विकसित हुई, जो बाद में पूर्ण गणराज्यों का आधार बनी। उदाहरण के लिए, कुरु और पांचाल जैसे जनपदों में राजा के साथ-साथ सामूहिक शासन के प्रमाण मिलते हैं।

औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश शासन ने भारत को एकजुट किया, लेकिन स्वतंत्रता संग्राम में गणतंत्र की मांग प्रमुख थी जो प्राचीन गणराज्यों से प्रेरित थी। 1947 में स्वतंत्रता मिली, लेकिन 1950 में संविधान लागू होने के साथ भारत गणतंत्र बना। 299 सदस्यों वाली संविधान सभा ने सामूहिक बौद्धिक मंथन करके आधुनिक भारत का संविधान तैयार किया। आज का भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जहां चुनाव, संसद और न्यायपालिका गणतंत्र की आधारशिला हैं। प्राचीन गणसंघों की विरासत आज भी

जीवित है, जैसे पंचायती राज में। यह इतिहास हमें सिखाता है कि लोकतंत्र कोई आयातित अवधारणा नहीं बल्कि हमारी अपनी मिट्टी से उपजी है। हालांकि चुनौतियां हैं, जैसे असमानता और भ्रष्टाचार, लेकिन प्राचीन परंपरा हमें मजबूत बनाती है।

स्वतंत्रता के बाद संसदीय परिपाटी को भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता, बहुलतावाद और समावेशिता के अनुरूप ढाला गया। इस लोकतांत्रिक परंपरा को सुदृढ़ करने में अनेक नेताओं का योगदान रहा, जिनमें बाबू जगजीवन राम का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे केवल एक प्रखर संसदीय नेता ही नहीं थे, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता और लोकतांत्रिक मूल्यों के दृढ़ समर्थक भी थे। उनका राजनीतिक जीवन भारतीय संसदीय परंपरा की निरंतरता, विकास और परिपक्वता का सशक्त उदाहरण है।

जगजीवन राम बहुत मायने में अपने काल का प्रतिनिधित्व करते थे जो उनकी सबसे बड़े उपलब्धि थी कि उन्होंने अपने समय को समझा और भारतीय संदर्भ में जो उसकी ज़रूरतें थी उन्हें पूरा किया। परिवर्तन कभी आसान नहीं होता लेकिन हमेशा संभव होता है। कठिनाईयां मन को उसी प्रकार मजबूत बनाती हैं जैसे श्रम शरीर को मजबूत बनाता है। इसी तरह से पूरे जीवन काल में सक्रिय रहे।

लोकतंत्र का विकास

ग्रीस के नगर राज्य से लेकर आज के प्रतिनिध्यात्मक प्रजातंत्र ने लम्बा सफ़र तय किया है। प्राचीन काल में ग्रीस के छोटे- छोटे नगर राज्य जनता की आम सहमति के आधार पर संचालित होते थे। धीरे-धीरे प्रजातंत्र ने एक व्यापक रूप ग्रहण किया।

आधुनिक युग में लोकतंत्रीय संस्थानों का प्रारम्भ तो इंग्लैण्ड से हुआ, लेकिन बाद में यह अमेरिका, फ्रांस, भारत आदि देशों में फैल गया, जहां इसे उदारवादी लोकतंत्र की संज्ञा दी गई। दूसरी ओर चीन, क्यूबा, उत्तरी कोरिया की शासन प्रणाली को जनवादी लोकतंत्र के नाम से अभिहित किया गया। सीमित प्रजातंत्र की परिकल्पना को जॉन लॉक ने और अधिक व्यापक रूप देने में सफलतम प्रयास किया। इसके बाद 18 वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में जीन जैकस रूसों ने समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व (Equality, Liberty and Federnity) का नारा दिया जो फ्रांस की जनक्रांति का आधार था। जनसहमति ही सही मायने में प्रजातंत्र है। ऐसा नमूना (Formula) मानवीय गरिमा के साथ पेश किया जिसमें राज्य की सभी शक्तियाँ जनता में निहित हैं। आज भारत के प्रजातंत्र की दिशा अब्राहम लिंकन के प्रजातंत्र "जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिए" (of the people, by the people and for the people) की ओर उन्मुख है।

इंग्लैण्ड के विचारक थॉमस मोर 1516 ई० में जिस यूटोपिया में कल्पित श्रेष्ठ राज्य की कल्पना करके विश्व प्रसिद्ध हो गये। उससे पहले भारत में गुरु रविदास ने "बेगमपुरा शहर को नाउ, दुखू अंदोह नहीं तिहिं ठाउ।....." में बेगमपुरा शहर को नमन करता हूँ, जहाँ कोई दुःख या चिंता नहीं है। इस आधार पर श्रेष्ठ राज्य की कल्पना की। बाबू जगजीवन राम उन्हें अपना गुरु मानते थे। उन्होंने ही गुरु रविदास को भौतिक और सांस्कृतिक रूप में स्थापित किया।

मैक्सी के शब्दों में "प्रजातंत्र बीसवीं शताब्दी में केवल राजनीतिक नुस्खा, एक सरकारी व्यवस्था या एक सामाजिक व्यवस्था नहीं है। यह एक प्रकार की जीवन पद्धति की तलाश है...और यह एक विश्वास है कि समस्त मानव जाति के लिए ऐसी जीवन पद्धति अति उत्तम है और यही मनुष्य की प्रकृति व विश्व के अनुकूल है।"

आज शासन का कोई भी स्वरूप लोकतंत्र से अच्छा नहीं है। इस तरह से इसकी सफलता के लिए जनता में लोकतंत्र की स्थापना की इच्छा तथा क्षमता होनी चाहिए। साथ ही जनता में एक ओर अपने कर्तव्य पालन तथा दूसरी ओर अधिकारों की रक्षा करने की इच्छा होनी चाहिए। लोकतांत्रिक संस्थानों को अधिक से अधिक जनता का भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के कई राज्यों ने साम्राज्यवादी शासन से स्वतंत्रता प्राप्त की तथा विश्व के नक्शे पर कई नए प्रभुत्व सम्पन्न राज्यों का उदय हुआ। इन

नवोदित राष्ट्रों के समक्ष कई नई तथा कठिन चुनौतियां, जैसे निर्धनता, अशिक्षा, बिमारियां तथा कुपोषण, कम कृषिगत तथा औद्योगिक उत्पादन में पिछड़ापन मुख्य समस्या थी।

जहाँ एक ओर देश आजादी के जश्न में डूबा था, तो दूसरी ओर बंटवारे के बाद भारत में पाकिस्तान से प्रवासन की घोर समस्या का सामना करना पड़ रहा था। ऐसे में संरचनात्मक विकास की गति में विकाश बहुत आवश्यकता थी। *“हर समस्या आपको एक अवसर देती है भरसक यत्न कर दिखाने का।”* ड्यूक एलिंगटन।

लोकतांत्रिक राज्य की अवधारणा

लोकतांत्रिक राज्य की अवधारणा समाज के कमजोर लोगों जैसे विकलांग, अशक्त, दलित शोषित, निराश्रित वृद्ध और विधवाओं के सम्यक विकास के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, रोजगार और मौलिक जरूरतें मुहैया कराना राज्य का दायित्व है। वंचित वर्गों को मुख्यधारा में लाकर उनका सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक विकास बाबू जगजीवन राम आजादी से पहले एवं आजादी मिलने के बाद बखूबी पूरा किया। सन् 1928 में जिस समय वह कलकत्ता में विज्ञान से स्नातक के छात्र ही थे विलिंगटन स्क्वायर पर 30 से 35 हजार मजदूरों एवं दलितों का विशाल सम्मेलन करवाया। जिसके बाद उनकी नेतृत्व क्षमता ने सुभाष चन्द्र बोस जी को भी प्रभावित किया। ब्रिटिश भारत में कलकत्ता उस समय क्रांतिकारी गतिविधियों का मुख्यालय हुआ करता था।

बोधवाक्य “वसुधैव कुटुम्बकम्” विश्व एक परिवार है। विश्व में सभ्यताओं के उदय से ही भारतवर्ष की सभ्यता और संस्कृति का विशेष महत्व रहा है। चाहे वह लोकतांत्रिक मूल्यों के स्थापना की बात हो या फिर व्यक्तित्व विकाश की, दोनों ही मसलों में देश अग्रणी रहा है। छठी शताब्दी ईशा पूर्व, सोलह महाजनपद काल में मगध राज्य के उत्कर्ष के समय से ही शक्ति के चरमोत्कर्ष पर था। यह वह समय है जब देश में 10 गणतांत्रिक राज्यों का उदय हो चुका है। प्राचीन भारत विश्व के स्वर्णिम क्षितिज पर सदैव दैप्तिमान रहा है। यहाँ पर अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया। वैश्विक स्तर पर अपनी और देश की पहचान स्थापित की।

14 से 15 अप्रैल, सन् 1936 में लखनऊ में ही अखिल भारतीय-दलित-वर्ग-संघ की बैठक आहुति हुई, जिसकी अध्यक्षता बाबू जी ने की। इस अधिवेशन में गांधी जी भी उपस्थित थे। बाबू जी ने कहा कि “हरिजन हिन्दू समाज में पूर्णतया मिल जाना चाहते हैं, परन्तु इसके लिए हिन्दू समाज में आमूल परिवर्तन लाना होगा, उसमें क्रांतिकारी बदलाव लाने होंगे और सामाजिक आत्मनिर्भरता लानी होगी”। इसी अधिवेशन में राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में बाबू जी ने कहा कि ‘देश की उन्नति में हमारी उन्नति है, इसकी मुक्ति में हमारी मुक्ति है, इसके उद्धार में हमारा उद्धार है।’

गवर्नेमेंट ऑफ इंडिया एक्ट (1935 के भारत शासन अधिनियम) के लागू होने से बर्मा को ब्रिटिश भारत से अलग कर दिया गया। साथ ही दो नये प्रान्त सिंध और उड़ीसा का निर्माण हुआ। जिसके फलस्वरूप बिहार विधान परिषद में एक सीट खाली हो गयी, जिस पर 1936 में बाबू जी को ‘बिहार विधान परिषद’ का सदस्य चुना गया।

बाबू जगजीवन राम में लोकतांत्रिक मूल्यों का उनमें समावेश था। जिसे वह समय-समय पर चरितार्थ किया। एक समय ऐसा आया जब भारत, पाकिस्तान के साथ-साथ अछूतिस्तान बनने की तरफ अग्रसर था। तब बाबू जी के ही प्रयासों द्वारा ही तीसरे विभाजन को रोका जाना सम्भव हो पाया। यदि बाबू जी जैसा दूरदर्शी व्यक्तित्व ना होता तो देश को तीसरे विभाजन से कोई रोक नहीं सकता था। 8 अप्रैल, सन् 1946 को शिमला में इंग्लैण्ड से आये कैबिनेट मिशन के समक्ष ‘दलित वर्ग संघ’ के अध्यक्ष के रूप में बाबू जी पेश हुए और कहा कि “भारत का दलित समाज अपने देश की स्वतंत्रता चाहता है।” बाबू जी की प्रेरणा से दलितों ने आजादी की लड़ाई में बढ़-चढ़ कर भाग लिया, फलतः भारत आजाद हुआ। उस समय कुछ भारतीय अंग्रेजों की सह पर देश का एक और विभाजन करवाना चाह रहे थे। (Slavers enjoy slavery) जिन्होंने गुलामी को महसूस नहीं किया, वे गुलामी में ही आनन्द की अनुभूति करते हैं।

समता, तार्किकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के संयोजन की वजह से बाबू जगजीवन राम भारतीय राजनीति में लोकतांत्रिक मूल्यों को सबके लिए रक्षित करने में सफल प्रशासक, राजनेता के रूप में जाने गये। वह स्वतंत्रता संघर्ष में बढ़-चढ़कर भागीदारी की। लोकतंत्र में उनका अटूट विश्वास था। साथ ही भारतीय जन मानस बाबू जी को 1937, 1946 ई. के राष्ट्र स्तरीय और 1952 के आम चुनाव से लेकर 1986 तक अपार बहुमत से संसद में अपना योगदान दिया। संविधान निर्मात्री सभा में उन पर बहुसंख्यक सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक कमजोर, पिछड़े और अल्पसंख्यक लोगों के हित सुरक्षित रखने के लिए विशेष प्राविधान करवाया।

भारतीय संसदीय परंपरा : एक संक्षिप्त परिचय

भारत में संसदीय शासन प्रणाली का औपचारिक स्वरूप 1950 में संविधान लागू होने के साथ स्थापित हुआ। भारतीय संसद लोकसभा और राज्यसभा जनप्रतिनिधित्व, उत्तरदायित्व और बहस की संस्कृति पर आधारित है। प्रश्नकाल, शून्यकाल, संसदीय समितियाँ, विपक्ष की भूमिका, और विधायी विमर्श इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

भारतीय संसदीय परंपरा की विशेषता यह है कि यहाँ बहस और संवाद को लोकतंत्र का मूल आधार माना गया है। संविधान निर्माताओं ने ऐसी व्यवस्था बनाई जिसमें सत्ता और विपक्ष दोनों को समान रूप से बोलने और निर्णय प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर मिले। इसी वातावरण में बाबू जगजीवन राम जैसे नेताओं ने संसदीय मर्यादाओं और लोकतांत्रिक आदर्शों को व्यवहार में उतारा।

संत परंपरा से सामाजिक न्याय तक

भारतीय समाज में संत परंपरा केवल धार्मिक आंदोलन नहीं थी, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, समता और मानवीय गरिमा की एक सशक्त धारा भी थी। मध्यकालीन संतों कबीर, रविदास, दादू, नामदेव, गुरु नानक आदि ने जाति, ऊँच-नीच और कर्मकांड का विरोध करते हुए मानव समानता का संदेश दिया। इसी परंपरा की उत्तरवर्ती शाखाओं में शिवनारायणी संप्रदाय का विशेष स्थान है, जिसने विशेष रूप से उत्तर भारत में सामाजिक समरसता, नैतिक जीवन और संगठनात्मक चेतना को बढ़ावा दिया। इसी परंपरा का प्रभाव बाबू जगजीवन राम के व्यक्तित्व और सार्वजनिक जीवन में स्पष्ट दिखाई देता है। वह संतों के योगदान को भलीभाँति जानते थे कि उनके द्वारा बड़े स्तर पर सामाजिक क्रांति हो सकती है। जिसे उन्होंने प्रयोग भी किया।

संत आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि

पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी का संत आंदोलन भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत विभाजन, धार्मिक आडंबर और सामाजिक असमानता के विरुद्ध एक वैचारिक क्रांति था। संत रविदास ने ष्वेगमपुराण के माध्यम से ऐसे समाज की कल्पना की जहाँ किसी प्रकार का भेदभाव न हो। कबीर ने जन्माधारित श्रेष्ठता का खंडन किया और मानवता को सर्वोपरि माना।

बाबू जगजीवन राम ने कभी भी सामाजिक न्याय को केवल राजनीतिक अधिकारों तक सीमित नहीं रखा। उनके लिए यह मानव गरिमा का प्रश्न था। यह दृष्टि संत रविदास और शिवनारायणी परंपरा की उस मान्यता से मेल खाती है जिसमें मनुष्य का मूल्य उसके कर्म और चरित्र से निर्धारित होता है, जन्म से नहीं।

छात्र जीवन में जब उन्होंने जातिगत भेदभाव का विरोध किया, तब वह केवल व्यक्तिगत प्रतिरोध नहीं था, बल्कि संत परंपरा से प्राप्त आत्मसम्मान और समानता की चेतना का व्यवहारिक रूप था। बाद में उन्होंने अछूत समाज के संगठन, शिक्षा और राजनीतिक प्रतिनिधित्व को राष्ट्रीय विकास का आवश्यक अंग माना।

समावेशी समाज, समता और मुख्यधारा

वह भलीभाँति जानते थे की बहुसंख्यक दलित समाज को मुख्य धारा में लाये बिना स्वतन्त्रता नहीं हाशिल की जा सकती। दीनहीन समाज का जीवन स्तर और मनोबल बिना उपर उठाये आजादी का कोई मूल्य नहीं है। 16 मार्च 1935 में कानपुर में विभिन्न प्रदेशों के प्रमुख दलित नेताओं का सम्मेलन

हुआ। उसमें बाबू जी के सुझाव पर “अखिल-भारतीय-दलित-वर्ग-संघ” की स्थापना हुई। इस संस्था ने उनके दिशा-निर्देश में दलितों के लिए देशव्यापी सामाजिक और राजनैतिक कार्य किया। देश को आजादी दिलवाने की प्रबल समर्थक राष्ट्रवादी संस्था थी।

19 अक्टूबर, 1935 को बाबू जी को रॉची में इंग्लैण्ड से आये, हैमण्ड कमीशन के समक्ष पहली बार दलितों के लिए मताधिकार की मांग की। इसके लिए उन्होंने दलितों को संगठित करके संघर्ष किया और दलितों को मताधिकार दिलवाया।

29 से 31 दिसम्बर, 1935 तक पूना में हुए ‘हिन्दू महासभा’ के 17वें अधिवेशन में बाबू जी ने कहा था कि ‘सार्वजनिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में, जन्म या जाति के कारण हिन्दू समाज में जो भेदभाव है, उन्हें हटा दिया जाय।’ हरिजनों के साथ उचित व्यवहार किया जाय। सम्मेलन की अध्यक्षता कर रहे पं० मदन मोहन मालवीय ने बाबू जी के वक्तव्यों के समर्थन में जोरदार भाषण दिया। साथ ही इस आशय का एक प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किया गया।

1937 ई. में बिहार में कांग्रेस की सरकार बनी, जिसमें बाबू जी शिक्षा एवं विकास विभाग में संसदीय सचिव थे। कार्यभार सम्भालते ही उन्होंने कालेज और स्कूल के दलित विद्यार्थियों की फीस माफ़ कर दी।

अंग्रेजों द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध में भारतीय सेना भेजने के विरोध में और अण्डमान में कैद स्वतंत्रता सेनानियों को रिहा न करने के विरोध में कांग्रेस मंत्रीमण्डल के साथ 15 नवम्बर, 1939 को बाबू जी ने भी इस्तीफा दे दिया। बिहार विधान सभा में उनका कार्यकाल ऐतिहासिक महत्व का और अत्यन्त प्रेरणादायक है।

दलितों-पिछड़ों-गरीबों की सामाजिक आर्थिक मुक्ति का युद्ध और देश की आजादी की जंग दोनों के लिए बाबू जी ने जान की बाजी लगा रखी थी।

1940 के असहयोग आन्दोलन और 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में दो बार बाबू जी हजारीबाग जेल में बन्द रहे। भारत माँ को आजाद कराने के लिए उन्होंने सहर्ष अंग्रेजों की यातना सही।

शिमला में एक शिष्ट मण्डल 8 अप्रैल, 1946 को इंग्लैण्ड से आया। जिसमें 3 मंत्री सर स्टैफर्ड क्रिप्स, लार्ड पैथिक लॉरेन्स और वी.ए. एलेक्जेंडर के शिष्टमण्डल के निमंत्रण पर बाबू जी उनसे मिले। वे भारत के उन करोड़ों दलितों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, जो आजादी चाहते थे।

अंग्रेजों की चाल थी कि जैसे भारतीय समाज को हिन्दू-मुस्लिम में बाँट दिया है वैसे ही उसे हिन्दू-दलित में बाँट दें। इस प्रकार आजादी की मांग टल जायेगी। परम देश भक्त बाबू जी इस झांसे में कैसे आ सकते थे ?

दलित-वर्ग-संघ के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने उन अंग्रेज मंत्रियों को स्पष्ट कह दिया कि दलित चाहते हैं कि अंग्रेज तुरन्त भारत छोड़ दें। दलित हिन्दू धर्म का हिस्सा हैं। अलग नहीं हैं। वे इसमें रहकर छुआछूत, भेदभाव और अन्याय के खिलाफ लड़ेंगे। दलित अपने अधिकार की लड़ाई आजाद भारत में लड़ेंगे, गुलाम भारत में नहीं। बाबू जी की दो टूक बातों का भारत को आजादी दिलाने में जो योगदान वह अतुलनीय है।

ब्रिटेन के सम्राट जॉर्ज षष्ठम ने बाबू जी को 1946 की अंतरिम सरकार में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण भेजा। तब देश के 12 नेता मंत्री बने थे। बाबू जी एक मात्र दलित मंत्री थे। 2 सितम्बर को वे इस घर में आकर रहने लगे। स्वतंत्रता की प्रारम्भिक वेला में वे देश निर्माण में जुट गये। यहां रहते हुए रेल मंत्री के रूप में देश के प्रत्येक स्टेशन पर पानी पिलाने के लिए अच्छूतों की नियुक्ति कर अपनी कलम की नोक से अस्पृश्यता पर भयंकर कुटाराघात किया। रेल मंत्री के ही कार्य काल में पदोन्नति में आरक्षण दिया। इसके विरोध में उच्चतम न्यायालय में मुकदमा चला जो बाबू जी जीत गये। तब से पदोन्नति में दलितों को आरक्षण मिला हुआ था। 1966 में सदी के सबसे भयानक अकाल में वे खाद्य मंत्री बनकर हरित क्रांति लाए। 1971 के युद्ध में रक्षा मंत्री थे। उन्होंने ऐसी विजय दिलाई जो न कभी हुई थी, न होगी। स्वतंत्रता के पश्चात् 1952, 1957, 1962, 1967, 1971, 1977, 1980 और 1984 के

सभी चुनाव वे सासाराम से लड़े और जीते। 1936, 1946, 1957 में निर्विरोध जीते। छुआछूत और जातीयता के दमघोंटू वातावरण में, केवल अपनी ताकत से निरन्तर जीतते रहे।

बाबू जी श्रमिकों को देश की रीढ़ की हड्डी मानते थे। देश के विकास में सबसे बड़ा कोई यदि भागीदार है तो वह श्रमिक ही है। देश में श्रमिकों के लिए 14 सुधार कानूनों का प्रावधान करके उन्हें लागू करवाया।

जेनेवा में 15 जून, सन् 1947 को 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन' (International Labor Origination) के तीसवें अधिवेशन में बाबू जी भारत के श्रम मंत्री होने के नाते देश का प्रतिनिधित्व करने पहुँचे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि, "श्रम मजदूर, परिवार, समाज तथा राष्ट्र का निर्माण करता है। श्रम मनुष्य का पालक है और श्रमिक उसका उपासक हैं, पुजारी हैं।" अधिवेशन में अध्यक्ष को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि, "द्वितीय विश्व युद्ध के 1919 में बने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सभी बैठकें यूरोप में आयोजित की गई हैं। आज जरूरत है कि अफ्रीका और एशिया महाद्वीप में सम्मेलन कराने चाहिए। जिससे वहाँ की समस्याओं का कारण और निवारण दोनों ही त्वरित मिलेगा और वह प्रभावी होगा।" इसी अधिवेशन में समान कार्य के बदले महिलाओं और पुरुषों को समान वेतन देने सम्बन्धी बिल पास हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के 33वें अधिवेशन जून 1950 में जेनेवा (स्विट्जरलैंड) में आयोजित सम्मेलन की अध्यक्षता बाबू जगजीवन राम ने की। उसी समय श्रमिकों के लिए लाभकारी बहुत से प्राविधान कराये गये। साथ ही जिन्हें सख्ती से लागू किया गया। उन्होंने ऐतिहासिक अध्यक्षीय भाषण दिया था। वह इस विश्वव्यापी संगठन के अध्यक्ष चुने जाने वाले पहले एशियाई नेता थे। उन्होंने पूरी दुनिया के सामने यह बात रखी कि "जब तक समाज के सबसे निचले तबके को न्याय नहीं मिलेगा, तब तक स्थायी वैश्विक शांति की कल्पना नहीं की जा सकती।"

उन्होंने कहा कि औद्योगिक विकास केवल मुनाफे के लिए नहीं, बल्कि श्रमिकों के जीवन स्तर को सुधारने और उनके अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए होना चाहिए। एशिया और पिछड़े देशों का प्रतिनिधित्व एक एशियाई अध्यक्ष के रूप में, उन्होंने विकसित देशों का ध्यान एशिया और अफ्रीका के गरीब व विकासशील देशों के मजदूरों की दयनीय स्थिति की ओर आकर्षित किया। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय नीतियों में इन देशों को प्राथमिकता देने की वकालत की।

सार्वजनिक वितरण की प्रणाली की सुदृढ़ शुरुआत बाबू जगजीवन राम जी के खाद्य एवं कृषि मंत्री के पदभार के समय हुई।

रक्षामंत्री बाबू जी ने 27 जनवरी, 1972 को इंडियन फार्म एजुकेशन फाउन्डेशन, लखनऊ, के तत्वाधान में आयोजित खाद्य-कृषि तथा उद्योग प्रदर्शनी का शिलान्यास करते हुए कहा 'कृषि देश के आर्थिक विकास का मेरुदण्ड है। 'जब तक देश में कृषि का विकास नहीं होगा तब तक ना तो उद्योग पनप पायेंगे और ना देश की सुरक्षा हो सकेगी। अतः आज देश में ट्रैक्टर और टैंक के सहयोग की आवश्यकता है।' इस तरह से देश के लिए जितने महत्वपूर्ण जवान हैं, उतने ही किसान हैं। साथ ही उन्होंने जोर देकर कहा 'धर्म या जाति के नाम पर संस्थाओं का नामकरण बंद हो।' कहा कि 'जाति देश की प्रगति में बाधक।'

समान शिक्षा के सम्बंध में वह कहते थे कि बच्चों की शिक्षा-व्यवस्था में एकरूपता आवश्यक है। बाबू जी यह भली-भाँति जानते थे कि देश में समान शिक्षा न होने से अलगाववाद, वैमनश्यता को बढ़ावा मिलता है। इसलिए देश में समान शिक्षा की जरूरत है।

आज के समय में जरूरत है एक देश के विकाश को सर्वोपरि रखते हुए परम्पराओं का न्यूनतम क्षरण।

जति प्रथा: ज्वलंत प्रश्न

भारतीय समाज की सबसे जटिल और दीर्घकालिक समस्याओं में जाति-व्यवस्था का प्रश्न प्रमुख रहा है। यह केवल सामाजिक संगठन का विषय नहीं, बल्कि मानव गरिमा, समान अवसर, लोकतांत्रिक अधिकार और राष्ट्रीय एकता से जुड़ा हुआ प्रश्न है। आधुनिक भारत में इस चुनौती को गहराई से समझने और उसके लोकतांत्रिक समाधान की दिशा प्रस्तुत करने वाले नेताओं में बाबू जगजीवन राम का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने जाति को केवल व्यक्तिगत पीड़ा का विषय नहीं माना, बल्कि राष्ट्र के

नैतिक और लोकतांत्रिक विकास की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक माना। उनका जीवन स्वयं इस प्रश्न का सजीव दस्तावेज था। बचपन से लेकर राष्ट्रीय राजनीति के सर्वोच्च स्तर तक उन्होंने जातिगत भेदभाव का सामना किया, किंतु उन्होंने प्रतिशोध, कटुता या सामाजिक विखंडन का मार्ग नहीं अपनाया। इसके स्थान पर उन्होंने संविधान, लोकतंत्र, शिक्षा और सामाजिक सुधार के माध्यम से परिवर्तन की दिशा चुनी।

जाति: सामाजिक यथार्थ और राष्ट्रीय चुनौती

बाबू जगजीवन राम का मानना था कि जाति केवल सामाजिक पहचान का प्रश्न नहीं है जब यह मनुष्य की गरिमा, अवसर और अधिकारों को सीमित कर देती है, तब यह राष्ट्रीय प्रगति में बाधा बन जाती है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'बैजम बैससमदहम पद पदकप' में इस बात पर बल दिया कि जातिगत असमानता लोकतंत्र की आत्मा के विरुद्ध है। यदि समाज का एक वर्ग जन्म के आधार पर वंचित रह जाता है, तो लोकतंत्र केवल औपचारिक व्यवस्था बनकर रह जाएगा।

उनके लिए जाति का प्रश्न किसी एक समुदाय का नहीं, बल्कि पूरे भारतीय समाज की नैतिक परीक्षा था।

व्यक्तिगत अनुभव से सार्वजनिक दर्शन तक

बाबू जगजीवन राम ने छात्र जीवन में जातिगत भेदभाव का अनुभव किया। इन अनुभवों ने उन्हें निराश नहीं किया बल्कि सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरित किया। उन्होंने शिक्षा, संगठन और सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भागीदारी के माध्यम से यह सिद्ध किया कि सामाजिक बाधाओं को संवैधानिक और लोकतांत्रिक साधनों से चुनौती दी जा सकती है।

उनका संघर्ष केवल व्यक्तिगत सम्मान के लिए नहीं था वह उन लाखों लोगों की गरिमा की रक्षा का संघर्ष था जिन्हें सदियों से सामाजिक असमानता का सामना करना पड़ा।

जाति और संविधान

बाबू जगजीवन राम भारतीय संविधान को जातिगत अन्याय के विरुद्ध सबसे प्रभावी लोकतांत्रिक साधन मानते थे। उनके लिए संविधान केवल शासन का दस्तावेज नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का उपकरण था। समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय के संवैधानिक आदर्श उनके सार्वजनिक जीवन के मार्गदर्शक सिद्धांत थे।

वे मानते थे कि कानून आवश्यक है, किंतु केवल कानून से सामाजिक परिवर्तन पूर्ण नहीं होगा। इसके लिए समाज की मानसिकता में परिवर्तन, शिक्षा का प्रसार और लोकतांत्रिक मूल्यों की स्वीकृति भी आवश्यक है।

शिक्षा: जाति-बंधन तोड़ने की शक्ति

बाबू जगजीवन राम शिक्षा को जातिगत विषमता समाप्त करने का सबसे प्रभावी साधन मानते थे। उनका विश्वास था कि शिक्षा व्यक्ति को आत्मविश्वास, आत्मसम्मान और सामाजिक गतिशीलता प्रदान करती है। इसलिए वे शिक्षा के लोकतंत्रीकरण, समान अवसर और वंचित वर्गों की भागीदारी के समर्थक थे। उनका जीवन स्वयं इस सत्य का उदाहरण है कि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का आधार बन सकती है। बाबू जगजीवन राम का मानना था कि सामाजिक न्याय का अर्थ केवल समान अधिकारों की घोषणा नहीं, बल्कि समान अवसरों की वास्तविक उपलब्धता है। इसलिए उन्होंने सार्वजनिक संस्थाओं, प्रशासन और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में वंचित वर्गों के प्रतिनिधित्व का समर्थन किया। उनके लिए प्रतिनिधित्व किसी विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं, बल्कि लोकतंत्र की पूर्णता का आवश्यक तत्व था।

संघर्ष नहीं, समरस परिवर्तन

उनकी विचारधारा की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने सामाजिक न्याय की लड़ाई को लोकतांत्रिक संवाद और संवैधानिक सुधारों से जोड़ा। वे मानते थे कि जातिगत अन्याय का समाधान समाज को विभाजित करके नहीं, बल्कि उसे अधिक न्यायपूर्ण और समावेशी बनाकर किया जा सकता

है। उनकी राजनीति में संघर्ष था, परंतु वैमनस्य नहीं दृढ़ता थी, परंतु कटुता नहीं परिवर्तन की आकांक्षा थी, परंतु लोकतांत्रिक मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं।

उपसंहार

बाबू जगजीवन राम का जीवन भारतीय लोकतंत्र की उस यात्रा की कहानी है, जिसमें एक साधारण परिवार और सामाजिक विषमता की पृष्ठभूमि से उठकर एक व्यक्ति ने देश की सर्वोच्च राजनीतिक संस्थाओं में अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज कराई। उनकी यात्रा केवल व्यक्तिगत उपलब्धि की कहानी नहीं थीय वह उन करोड़ों सामान्य नागरिकों की आशाओं, आकांक्षाओं और आत्मसम्मान की यात्रा भी थी, जिन्हें लंबे समय तक सामाजिक भेदभाव और असमानता का सामना करना पड़ा। उनके व्यक्तित्व में जनसाधारण को यह विश्वास दिखाई देता था कि लोकतंत्र में उनकी आवाज भी सुनी जा सकती है और उनका सम्मान भी सुरक्षित रह सकता है।

बाबू जगजीवन राम ने राजनीति को केवल सत्ता प्राप्त करने का माध्यम न मानकर जनसेवा और सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाया। श्रमिक, किसान, वंचित और कमजोर वर्गों के प्रश्नों को राष्ट्रीय विमर्श से जोड़ना उनके सार्वजनिक जीवन की महत्वपूर्ण विशेषता रही। उनके लिए रोटी, रोजगार, शिक्षा, सम्मान और समान अवसर जैसे प्रश्न केवल आर्थिक अथवा प्रशासनिक विषय नहीं थे, बल्कि मानवीय गरिमा से जुड़े प्रश्न थे। यही कारण है कि उनके राजनीतिक जीवन को समझते हुए जनसाधारण की भावनाओं, उम्मीदों और संघर्षों को अलग करके नहीं देखा जा सकता।

उनकी उपस्थिति ने उन लोगों में आशा पैदा की जिन्हें लगता था कि सत्ता और शासन की व्यवस्था उनसे दूर है। संसद में उनकी आवाज केवल एक सांसद या मंत्री की आवाज नहीं थीय वह उन लोगों की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति थी जो समान अधिकार, सम्मान और बेहतर भविष्य की तलाश में थे। उनके संघर्ष ने यह संदेश दिया कि लोकतंत्र का दरवाजा समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए खुला होना चाहिए।

अंततः बाबू जगजीवन राम की सबसे बड़ी विरासत केवल उनके पद, राजनीतिक उपलब्धियाँ या प्रशासनिक योगदान नहीं, बल्कि जनसाधारण के मन में पैदा किया गया विश्वास हैकृयह विश्वास कि लोकतंत्र में कोई भी व्यक्ति छोटा नहीं है, कोई आवाज महत्वहीन नहीं है और सामाजिक परिस्थितियाँ किसी व्यक्ति की गरिमा और अधिकारों को निर्धारित नहीं कर सकतीं। उनकी स्मृति आज भी सामाजिक न्याय और समानता की आकांक्षा रखने वाले जनमानस को प्रेरित करती है। उनका जीवन हमें यह संवेदनशील संदेश देता है कि लोकतंत्र की वास्तविक सफलता तब है, जब देश का अंतिम व्यक्ति भी यह महसूस करे कि यह राष्ट्र उसका है, यह लोकतंत्र उसकी आवाज है और उसकी गरिमा भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी किसी शक्तिशाली व्यक्ति की। यही बाबू जगजीवन राम के लोकतांत्रिक जीवन-दर्शन की सबसे मानवीय और स्थायी विरासत है।

संदर्भ सूची:-

1. डॉ० रामविलास भारती, शोध पत्र “बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में दलित समाज : एल० इलैयापेरुमल रिपोर्ट के आलोक में”, *इतिहास दृष्टि* : दिसम्बर 2009, प्रकाशक, सैयद नजमुल रज़ा रिजवी, प्रकाशन, दी०द०उ० गोरखपुर विश्वविद्यालय।
2. सुधीर हिलसायन, “दलितों के राजनीतिक अस्तित्व के 75 साल व राजनीतिक पहचान के 15 साल” लेख, *माया युग* मासिक पत्रिका, सितम्बर 2007।
3. डॉ० कविराज “उत्तर प्रदेश में दलित नेतृत्व का उभार”, शोध पत्र, *ए जर्नल ऑफ सोशल साइंस*, वाल्यूम-3, नं० 1, जनवरी-जून 2006 में लखनऊ द्वारा प्रकाशित।
4. डॉ० विवेक कुमार, “दलित समुदाय और सामाजिक परिवर्तन”, (लेख) ‘हंस’, मासिक पत्रिका, अगस्त 2004।

5. कन्हैयालाल चंचरीक, "आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन", प्रथम संस्करण 2003, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली ।
6. कन्हैयालाल चंचरीक, "दलित आइडेंटि हिस्ट्री एण्ड ट्रेडीशन" संस्करण 2002, ओशन बुक, नई दिल्ली ।
7. चमनलाल, प्रो०, "दलित साहित्य एक मूल्यांकन", 2009 संस्करण, प्रकाशक; राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली ।
8. चंचरीक, कन्हैया लाल, "जगजीवन राम जीवन और व्यक्तित्व" नई दिल्ली
9. चंचरीक, के० एल०, "भारतीय दलित आन्दोलन की रूपरेखा", 2007 संस्करण, प्रकाशक : यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली ।
10. चंचरीक, कन्हैया लाल, "भारत में दलित आंदोलन", भाग-दो, श्रीस्ट बुक्स, नई दिल्ली, 2015.
11. चंचरीक, कन्हैया लाल एवं सरोज प्रसाद, "भारतीय दलित जाति कोष", भाग-दो, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2012.
12. चानना, देवराज, "प्राचीन भारत में दास प्रथा", प्रथम संस्करण 1989, प्रकाशक; हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।
13. चोपड़ा, पी०एन०, पुरी, बी०एन०, दास, एम०एन०, "भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास" 2004, मैकमिलन प्रकाशन, नई दिल्ली ।
14. चौधरी, प्रसन्न कुमार, श्रीकान्त, "बिहार में दलित आन्दोलन 1912-2000" द्वितीय संस्करण, 2005, प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली ।
15. डॉ० निरंजन कुमार, "हिन्दी नवजागरण एवं दलित चेतना" आलेख 'दलित साहित्य', 'वार्षिकी', 2005, सम्पादक 'जयप्रकाश कर्दम' ।
16. राजेन्द्र कृष्ण, लेख, "भारतीय राजनीति के शिखर पुरुष : श्री जगजीवन राम", मासिक पत्रिका आउटलुक ; जुलाई 2010,"
17. डी०पी० वरुण, "समतामूलक समाज के महान शिल्पी बाबू जगजीवन राम" 'अम्बेडकर इन इंडिया' हिन्दी मासिक, लखनऊ ।
18. डॉ० ऊषा एम० मुंशी, 'पुस्तकालयाध्यक्ष, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, (IIPA) नई दिल्ली', द्वारा दो दिवसीय राष्ट्रीय सेमिनार में 'Role of Babu Jagjivan Ram in Promoting Social Justice in India' विषय पर विचार, 16 दिसम्बर 2009, नई दिल्ली ।
19. माननीया मीरा कुमार (सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार) द्वारा "बाबू जगजीवन राम पीठ", सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के उद्घाटन समारोह के अवसर पर 29 अक्टूबर 2007 को दिया गया भाषण ।
20. माननीया मीरा कुमार (सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार) द्वारा "डॉ० एनी बेसेंट स्मृति व्याख्यानमाला," महिला अध्ययन एवं विकास केन्द्र, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, में 29 अक्टूबर 2007 को दिया गया भाषण ।
21. संसद चर्चा, 1952-1956, बाबू जगजीवन राम, केन्द्रीय श्रममंत्री के प्रश्नोत्तर स्पेशल रिपोर्ट ऑन स्पीच एट आई०एल०ओ० एज ए लेबर मिनिस्टर ।
22. Sudhir Hilsayan, 'Research Paper' on "Babu Jagjivan ram as the Crusader of Dalit Upliftment."

23. Somnath Chatterjee (*Hon'ble Speaker, Lok Sabha*), "Parliamentary Democracy in India," At 'The function organized by the Ministry of Social Justice and Empowerment to mark The Birth Centenary of Late Babu Jagjivan Ram' 30 May, 2007, New Delhi.
24. Speeches of Smt. Meira Kumar (*Minister for Social Justice and Empowerment, Govt. of India*), on "Gender Empowerment, Women : Stabilizing an Insecure World" 6 March 2008, at European Commission, Brussels.
25. Speeches of Smt. Meira Kumar (*Minister for Social Justice and Empowerment Govt. of India*), International Conference on "Moving Towards Gender Sensitization of Trade Policy" 25-27 February, 2008 Hotel Le Meridian, New Delhi.
26. Speeches of Smt. Meira Kumar (*Minister for Social Justice and Empowerment Gov. of India*), "Challenges in women's Empowerment and Leadership" Pravasi Bhartiya Divas 8th January Vigyan Bhawan, New Delhi.
27. 1st Annual International Women's Conference entitled "Shakti, the Strength of Women: Celebrating Success" Speeches of Smt. Meira Kumar (*Minister for Social Justice and Empowerment Gov. of India*), 2nd-4th June, 2005, Human Values & Ved Vigyan Maha Vidya Peeth, Bangalore.